नारी का उदात्त रूप--एक दृष्टि

—मुनि प्रकाशचन्द्र 'निर्भय'
एम० ए०, साहित्यरत्न,
(मालवकेसरी स्व० श्री सौभाग्यमलजी मा० सा० के शिष्य)

जैन कवि श्री अमरचन्द्रसूरि ने नारी के विषय में एक बहुत बड़ी बात कही है। उस बात के माध्यम से हम यह सहज में समझ सकते हैं कि वस्तुतः नारी जाति को कितना उच्च सम्मान दिया है जैन दार्शनिकों/कवियों/एवं मनीषियों ने; देखिए उन्हीं के शब्दों में—

"अस्मिन्नसारे संसारे, सारं सारंगलोचना।
यत्कुक्षि प्रभावा एता वस्तुपाल ! भवादृशाः ।।"

अर्थात्—"इस असार संसार में सारंग लोचन वाली स्त्री ही सार है, क्योंकि हे वस्तुपाल ! उसकी कुक्षि से तुम जैसे नर-रत्नों का जन्म हुआ।"

जैन धर्म और दर्शन के आद्य-प्रणेता भगवान ऋषभदेव/प्रथम तीर्थंकर से लगाकर शेष २३ तीर्थंकरों को जन्म देने वाली इस धरा पर नारी ही है।

तीर्थंकर की माता को जगत्-जननी कहा जाता है; और रत्न-कुक्षि की धारिणी भी।

तीर्थंकर के जन्मोत्सव के समय जब इन्द्र देव इस मनुजलोक में आते हैं तो वे भी सर्वप्रथम उनकी माता को ही नमस्कार करते हैं।

'हे रत्नकुक्षि की धारिणी, जगत्-जननी माता, तुम्हें नमस्कार है।'

जैन धर्म-दर्शन के मान्य/सर्वपूज्य ६३ (त्रेसठ) शलाका-पुरुषों का जन्म भी नारी के गर्भ से ही हुआ।

नारी के अभाव में विश्ववंद्य २४ तीर्थंकरों का एवं अन्य शलाका-पुरुषों का इस धरा पर कैसे अवतरण होता ?

आज हम सब भी इस मनुज-धरा पर स्थित हैं वह भी नारी के उपकार से/अनन्त उपकार से। नारी के माध्यम से ही हम जन्म लेकर इस धरा पर इस मनुज लोक में विचरण कर रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसार के जितने भी महापुरुष/ऋषि/मुनि/मनीषी/संयमी, जो कि हमारे वंदनीय हैं; जिन पर हमें बड़ा गौरव है; जिनके अद्भुत त्याग-तप एवं आदर्श जीवन पर नाज़ है हमें; जिनकी दुहाई देते हम थकते नहीं, जिन्हें हम या हमारी संस्कृति भूल नहीं सकती; वे सभी नारी की कुक्षि से ही जन्मे थे।

हमारा प्राक् एवं प्राचीन इतिहास हमें नारी के महिमामय जीवन के प्रति संकेत करता है। हम देखें तो सही प्राचीन इतिहास को उठाकर। हमें वस्तु-स्थिति का ज्ञान हो जाएगा।

नारी के महानतम जीवन का दर्शन हमें आद्य तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव की जन्म-दात्री माता मरुदेवा में होते हैं। प्रभु ऋषभदेव के द्वारा तीर्थ-स्थापना से पहले ही वे केवलज्ञान-केवलदर्शन के साथ मोक्ष/शिव गति को प्राप्त हो गईं।

नारी की महानता के लिए एवं आत्मोत्थान के बारे में इससे बड़ा और क्या प्रमाण हो सकता है?

ऐसे संदर्भ में स्वतः ही प्रश्न उठ खड़ा होता है कि नारी को नरक का द्वार बताने वाली उक्ति का क्या हुआ? यथा—

(१) 'द्वारं किमेकं नरकस्य? नारी'—शंकर प्रश्नोत्तरी-३

(२) 'स्त्रियो हि मूलं नरकस्य पुंसः'—अज्ञात

कहाँ तो वह नरक का द्वार कहलायी और कहाँ वह मोक्षगति की प्रथम अधिकारी बन गयी? इन दोनों बातों में जमीन और आसमान सा विराट अन्तर रहा हुआ है।

जब हमने नारी को भोग्या और भोगमयी स्थिति में ही देखा तो हमें वह निकृष्ट दिखाई दी और जब उसे सर्वोच्च शिखर पर बैठे देखा तो हमारा मस्तक नत हो गया श्रद्धाभाव से।

जहाँ हम उसे नरक का द्वार बतला कर नारी का अपमान करते हैं, वहीं उसे उत्कृष्ट उपमा से उपमित कर उसका सम्मान भी कर देते हैं। यथा—

(१) 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥' —मनुस्मृति-३

(२) 'स्थितोऽसि योषितां गर्भे, ताभिरेवविवर्द्धितः।
अहो! कृतघ्नता मूर्ख! कथं ता एव निंदसि?' ……

(३) 'राधा-कृष्णः स भगवान्, न कृष्णो भगवान् स्वयम्।' —पौराणिक वाक्य

हर वस्तु के दो पहलू हैं।

हर वस्तु नय-प्रमाण से युक्त है।

प्रत्येक वस्तु अनेकांतवाद के संदर्भ में उभयात्मक या अनेकात्मक है।

प्रत्येक वस्तु स्याद्वाद के सप्तभंगों में विभक्त होकर भी सत्यता एवं एकरूपता लिए हुए है।

हमारा सोच जब किसी भी वस्तु, जड़ हो या चेतन एक पहलू को लेकर, एक नय को लेकर, एक अपनी दृष्टि को लेकर, अपनी ही परिभाषा में बँध जाता है तब हम सत्य और वस्तुस्थिति के दर्शन नहीं कर सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माता मरुदेवी का एक मात्र उदाहरण/प्रसंग ही हमारे अशुभ दृष्टिकोण (नारी नरक का द्वार है) को खण्डित कर देता है। पुरुष के पुरुषत्व का अहं, उसकी श्रेष्ठता तथा उसका थोथा गौरव यहाँ आकर चुप हो जाता है। मौन हो जाता है।

प्राचीनकाल से या यह कह दें कि नारी प्रारम्भ से ही अपने अस्तित्व का बोध कराती आयी है हमें, तो कोई अत्युक्ति या अतिशयोक्ति पूर्ण बात नहीं होगी।

नारी सृष्टि का सुंदरतम उपहार माना गया है।
नारी को सृष्टि का आधार कहा गया है।

'असारे खलु संसारे, सारं सारंगलोचना।' —योग वासिष्ठ

असार संसार में नारी को सार रूप माना गया है।
मनुस्मृति में कहा गया है—

'स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु; न विशेषोस्ति कश्चन।' —मनुस्मृति ९/१६

'सृजन—आदि से विश्व नारी की गोद में क्रीड़ा करता आया है। उसकी मुस्कान में महा-निर्माण के स्वप्न है और भ्रू-भंग में प्रलय की विनाशकारी घटाएँ!' —नजिन

नारी जीवन की महिमा शब्दातीत है। क्योंकि नारी के बिना संसार अधूरा है।

मानव-संसार रूपी रथ के पुरुष और स्त्री दोनों ही दो चक्र हैं जिनके बल पर यह मानव-संसार रूपी रथ गतिमान है।

दो चक्र विना रथ-चालन असम्भव है। नारी रूपी एक चक्र के अभाव में संसार-रथ नहीं चल सकता है।

पुरुष के अहं का वह किला—कि मैं स्वयं समर्थ हूँ—यहाँ आकार धराशायी हो जाता है।

नारी के प्रति असम्मान की भावना जो पुरुष-मन में व्याप्त है वह इस संदर्भ में टूट जाती है।

नारी के अप्रतिम एवं गरिमामय व्यक्तित्व को किसी कवि ने शब्दों में बांधकर इस प्रकार रूपायित किया है—

'नारी-नारी मत करो, नारी नर की खान।
नारी ही के गर्भ से, प्रकटे वीर भगवान॥'

आओ, अब देखें हम नारी के बहु आयामी व्यक्तित्व को विविध संदर्भों में! विभिन्न रूपों में!! जिसके बाद हम किसी निष्कर्ष पर पहुँच पायेंगे।

हमारे प्राचीन इतिहास में नारी जीवन के विविध पक्षों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। फिर भी इस प्रस्तुत लेख के माध्यम से नारी के विभिन्न रूपों का एक संकेत मात्र किया जा रहा है जिसके कारण हमारा सोच/विचार शुभ दिशा में मुड़े।

आदर्श माता के रूप में नारी

नारी के हृदय को सागर की उपमा दी जा सकती है। क्योंकि उसके हृदय सागर में पुत्र के प्रति जो वात्सल्य भाव है वह अथाह/अपरिमित/असीम/अनंत है। उसके हृदय-सागर में वात्सल्य-जल सदा-सदा से लहराता हुआ भरा है जो कि कभी समाप्त होने वाला नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी के कारण वह पुत्र रूप में मानव प्राणी को ९ माह तक अपने गर्भ में धारण कर प्राण-प्रण से उसकी रक्षा में जुटी रहती है।

अपरिमित वात्सल्य भाव के कारण ही पुत्र प्रसव के साथ ही उसका वात्सल्य भाव भी धवल-दुग्ध की धारा में बह निकलता है। जिसका एक-एक बूँद भी अनमोल है, उसकी कीमत नहीं आंकी जा सकती है।

'कहते हैं कि मानव के रक्त में जब तक माता के रज का एक भी कण विद्यमान रहता है वहाँ तक मर नहीं सकता। जिस क्षण उसका अन्तिम कण समाप्त हो गया उस दिन शरीर भी छूट जायेगा।'

माता के रूप में वह आदर्श सेवा की प्रतिमूर्ति भी है। जब तक पुत्र अपने पैरों पर खड़ा होकर कार्य करने में सक्षम नहीं बने वहाँ तक वह अपने तन की चिन्ता भी नहीं करके पुत्र की सेवा में लगी रहती है।

मानव को प्रारम्भिक शिक्षा देने वाली भी नारी रूप माता ही है। माता द्वारा दिये गये धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, पारिवारिक आदि सभी प्रकार के संस्कार जीवन पर्यन्त मानव के हृदय में जमे रहते हैं।

पुत्र चाहे रूपवान हो या विद्रूप, सुन्दर हो या असुन्दर, अंगोपांग से परिपूर्ण हो या विकल—कैसा भी हो, माता के हृदय में उसके प्रति असीम ममता एक समान ही रहती है। उसकी भावना में कभी कहीं भेदभाव नहीं आता है।

पुत्र के तन-मन की जरा-सी पीड़ा से भी माता का हृदय रो उठता है। पुत्र की पीड़ा/बेचैनी/कष्ट को हटाने/मिटाने के लिए वह प्राण-प्रण से जुट जाती है। उस समय उसका मातृत्व साकारता में खिल उठता है। वह समर्थ है या नहीं यह प्रश्न नहीं है किन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि उसका प्रयत्न कितना करुणा/ममता से भरा हुआ है।

किसी ने माता रूपी नारी के लिए कहा है कि उसे कभी भी किसी भी उपमा से उपमित नहीं किया जा सकता है। क्योंकि वह अनुपमेय होकर भी महत्वपूर्ण है।

माता मरुदेवी ने ऋषभदेव को, माता त्रिशला ने महावीर को, माता कौशल्या ने श्रीराम को, माता देवकी ने श्रीकृष्ण वासुदेव को, माता अंजना ने हनुमान को, माता सीता ने लव-कुश को, माता रुक्मिणी ने प्रद्युम्नकुमार को, माता मदनरेखा ने नमिराज ऋषि को, माता भद्रा ने शालिभद्र को, माता धारिणी ने जम्बूस्वामी जैसे पुत्र-रत्नों को जन्म देकर संसार को यह बता दिया कि नारी अबला होकर भी सबलों को जन्म देने वाली होती है।

मातारूप नारी की कुक्षि से श्रेष्ठतम महापुरुषों का जन्म हुआ है। इसके बारे में अधिक क्या कहें? संक्षिप्त में इतना ही बहुत है कि नारी के बिना मानव कभी इस धरा पर अवतीर्ण नहीं हो सकता।

आदर्श पत्नी के रूप में

नारी का जिस घर में जन्म होता है वह उस घर, परिवार, माता-पिता, भाई-बहन, ग्राम-नगर आदि सभी को, उनके प्रति उसकी जो ममता/मोह, लगाव है उस सभी को तोड़कर वह समय आने पर अपने पति के घर चली जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनसा–वाचा–कर्मणा वह पति के गृह-द्वार को अपना मानकर उस परिवार के सुख-दुःख की समभागी बन जाती है।

उसका अपना सारा सुख-दुःख उस परिवार से जुड़ जाता है।

पति और उसका परिवार ही उसके लिए आधारभूत होता है जिसे वह प्राण-प्रण से स्वीकारती है।

नारी पति के साथ छाया रूप हो जाती है।

मछली और पानी का जो सम्बन्ध होता है वही सम्बन्ध पति-पत्नी का होता है।

नारी पत्नीधर्म को स्वीकार कर धर्ममार्ग पर आगे बढ़ती हुई पति की भी धर्माराधना में सहयोगी बनती है।

इसलिए नीतिकार ने कहा है—'भार्या-धर्मानुकूला।'

अतीत के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जायेंगे हमें, जिनमें नारी का **'धर्मानुकूला-भार्या'** रूप साकार हो जीवन्त प्रतीक बन चुका था।

सती सीता, महारानी दमयन्ती, महारानी द्रौपदी, आदि अनेक राजवधुएँ पति-सेवा में ही अपना सुख मानकर उनके साथ दुःख उठाने को भी तत्पर बनीं।

महासती मदनरेखा का उदाहरण तो वस्तुतः नारी के दिव्य पत्नीधर्म को मूर्तिमन्त/जीवन्त कर देता है।

अपने ही जेठ मणिरथ द्वारा अपने पति युगबाहु पर प्राणघातक वार के पश्चात जब वह देखती है कि उसका पति जीवित नहीं रह सकता है तो अपनी असहाय अवस्था का विचार नहीं करते हुए वह युगबाहु को धर्म का शरणा देकर, क्रोध-द्वेष भाव से हटाकर शुभ भावों में स्थिर कर उसकी गति को सुधार देती है।

नारी धर्मसहायिका होती है, इस उक्ति का यह जीवन्त उदाहरण है।

इसी प्रकार बौद्धधर्मानुयायी और पाप-पंक से लिप्त मगध सम्राट महाराजा श्रेणिक को महारानी चेलना ने सद्धर्म/वीतराग-वाणी पर उन्हें स्थिर कर, उनकी सम्यक्त्व प्राप्ति में सहायक बनकर आदर्श पत्नीधर्म का निर्वाह किया था।

सती सुभद्रा ने संकटों की चिन्ता न करते हुए अपने पति और पूरे परिवार की वीतराग-वाणी पर श्रद्धा जगाकर श्रमण-धर्म का उपासक बना दिया।

ऐसे अनेक उदाहरण हम देख सकते हैं जिनमें नारी ने अपने धर्म-पत्नी रूप को गरिमा से मंडित कर उसे भव्यता प्रदान की है।

धर्मपथानुगामी नारी

इन्द्रिय-सुखोपभोग के लिए अनेक नारियों ने अपने-अपने पति के साथ आतम-बलिदान किया है।

किन्तु धर्मपथानुगामी तथा शीलधर्म की रक्षा के खातिर भी नारी ने अपने पति के प्रति जो अनन्य श्रद्धा भाव है उसे कायम रखा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीलधर्म की रक्षा के लिए अंग देश की चंपा नगरी के महाराजा दधिवाहन की धर्मपत्नी राजरानी धारिणी (चन्दनबाला की माता) ने अपनी जिह्वा खींचकर प्राणों का उत्सर्ग कर शीलधर्म की रक्षा की।

शीलधर्म की रक्षा के हेतु अनेकानेक नारियों ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया है।

परन्तु इन सबसे भिन्न एक ऐसी घटना भी इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में अंकित है कि जिससे हमारा मस्तक गौरव से एकदम ऊँचा उठ जाता है। वह घटना है राजमति की।

२२वें तीर्थंकर नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) की होने वाली पत्नी राजमति।

नेमिनाथ अपने विवाह के अवसर पर होने वाली पशुवध की घटना से सिहर कर, करुणाभाव से भर तोरण द्वार से लौट गये।

सोलह शृंगार से सुसज्जित, पति-मुख देखने को बेचैन मन वाली राजमति ने जब यह देखा कि उसके होने वाले पति नेमिनाथ तोरण द्वार से लौट गये तब उसके हृदय को गहरा धक्का लगा और वह मूर्च्छित हो गयी।

होश में आने पर जब उसे ज्ञात हुआ कि नेमिनाथ संयमी बनने वाले हैं तो वह भी पति-पथ की अनुगामिनी बनने को आतुर हो उठी।

ऐसे में उसके माता-पिता/महाराजा उग्रसेन तथा महारानी धारिणी एवं पूरे परिवार ने उसे बहुत समझाया कि दूसरा वर ढूंढ़कर विवाह कर देंगे। परन्तु वह अपने संकल्प पर अडिग रही।

प्राप्त सम्पूर्ण राज्य वैभव और परिवार की मोह-ममता छोड़कर वह भी संयमी बन गयी।

प्राग् ऐतिहासिक काल की यह पति-पथानुगामी अद्भुत/विस्मयकारी घटना हमें झिझोड़कर रख देती है कि क्या नारी इतनी उत्कृष्ट त्याग की दिव्य मूर्ति भी हो सकती है?

पर है यह घटना सत्य! और इस घटना पर हम सभी को निश्चित रूप से गौरव की अनुभूति होती है।

कुशल शासिका के रूप में

नारी हृदय को सद्यः विकसित पुष्प पंखुड़ियों की उपमा दी जाती है; क्योंकि वह तन-मन दोनों से ही सुकुमार है।

किन्तु कर्त्तव्य के नाते समय आने पर वह उस सुकुमारता को त्यागकर कठोरता भी धारण कर लेती है। फिर भी है तो वह सुकुमार ही।

संसार में तो अनेक नारियों ने शासन-पद पर बैठकर शासन किया है। वहाँ उनमें कठोरता के साथ कभी-कभी क्रूरता भी प्रवेश कर जाती है/कर गयी है।

परन्तु धर्म-शासिका के रूप में उसका रूप कुछ और ही दृष्टिगत होता है।

वहाँ कभी कठोरता धारण करनी भी पड़े तो वह कठोर भी हो जाती है किन्तु वहाँ क्रूरता कभी पास तक नहीं फटकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म में २४ तीर्थंकरों के विशाल साध्वी समुदाय का नेतृत्व २४ नारियों ने ही किया है।

प्रथम तीर्थंकर के समय ब्राह्मी महासती थी और अन्तिम तीर्थंकर महावीर के शासन में महासती चंदना हुई है।

इन दोनों ने और बीच के २२ तीर्थंकरों के समय की २२ महासतियों ने बड़ी कुशलता से विशाल साध्वी समुदाय जो कि हजारों-लाखों की संख्या में था उनका नेतृत्व किया।

इनके द्वारा किया गया नेतृत्व स्वयं के लिए भी कल्याणकारी था और साध्वी समुदाय के लिए भी।

एक उदाहरण लें—महासती चंदना जी ने एक बार महासती मृगावती को उपालंभ दिया। इस उपालंभ के माध्यम से ही मृगावती और चंदना दोनों को ही केवलज्ञान उपलब्ध हो गया।

धर्मोपदेशिका के रूप में

यूं तो नारी माता के रूप में उपदेशिका/शिक्षिका रही ही है किन्तु आत्म-साधना के मार्ग में भी नारी स्वयं अपना ही आत्म-कल्याण नहीं करती अपितु अपने परिवार एवं अनेक भवि-जीवों को भी आत्म-साधना के पथ पर बढ़ाने में सहायक होती है।

साधना-पथ में भी वह कुशल उपदेशिका का रूप ग्रहण कर वीतराग-वाणी का प्रसार करती हुई अनेक भव्य-जीवों को प्रशस्त पथ/साधना पथ पर आरूढ़ करती है।

यथा—प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की सुपुत्री साध्वी ब्राह्मी एवं सुन्दरी दोनों ने तपस्यारत अहं से ग्रसित अपने भाई बाहुबली को उपदेश देकर अहं रूपी हाथी से उतारकर केवलज्ञान रूपी ज्योति से साक्षात्कार कराया।

'वीरा म्हारा! गज थकी नीचे उतरो!
गज चढ्या केवल नहीं होसी रे..........वीरा म्हारा.......!

अहं के टीले पर चढ़कर किसी ने आज तक केवलज्ञान रूपी सूर्य को नहीं देखा/पाया। जिसने भी देखा/पाया उसने नम्रता/विनय से ही।

ब्राह्मी-सुन्दरी के उद्‌बोधन से बाहुबली भी नम्रीभूत हुए और ज्यों ही उन्होंने चरण-न्यास किया, वे केवल-सूर्य से प्रभासित हो गये।

ठीक इसी तरह का उपदेश साध्वी राजमति ने रथनेमि मुनि को भोगों की ओर मुड़ते देखकर दिया था। यथा—

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा।
वन्तं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे॥ ४२॥
अहं च भोगरायस्स, तं चऽसि अंधगवण्हिणो।
मा कुले गंधणा होमो, संजमं निहुओ चर॥ ४३॥ —उत्तराध्ययन सूत्र २२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अर्थात्—हे अयश की कामना करने वाले। तुझे धिक्कार है, जोकि तू असंयत जीवन के कारण से वमन किये हुए को पीने की इच्छा करता है। इससे तो तुम्हारा मर जाना ही अच्छा है।'

'मैं उग्रसेन की पुत्री हूँ और तुम समुद्रविजय के पुत्र हो। हम दोनों को गन्धन कुल के सर्पों के समान न होना चाहिए। अतः तुम निश्चल होकर संयम का आराधन करो।'

इस वचनों के फलस्वरूप रथनेमि की जो स्थिति बनी, वह इस प्रकार है—

'तीसे सो वयणं सोच्चा, संजईए सुभासियं।
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइआ॥ उत्तरा० २२/४७

'रथनेमि ने संयमशील राजमति के पूर्वोक्त सुभाषित वचनों को सुनकर अंकुश द्वारा मदोन्मत्त हस्ती की तरह अपने आत्मा को वश में करके फिर से धर्म में स्थित कर लिया।'

जैन धर्म दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान एवं विपुल रूप से दार्शनिक ग्रन्थों के रचयिता थी हरिभद्रसूरि आचार्य ने महासती महत्तरा याकिनी से प्रतिबोध प्राप्त किया था।

प्राचीन एवं अर्वाचीन दोनों ही समय में अनेक साध्वी-रूा नारियों ने भवि जीवों को सद्बोध से बोधित कर धर्मोपदेशिका के रूप को प्रकट किया है।

शान्ति की अग्रदूता नारी

प्रायः कहा जाता है कि इस जगत में ३ वस्तुएँ विग्रह को उत्पन्न करने वाली हैं—जर, जोरु और जमीन।

किन्हीं अर्थों और सन्दर्भों में सही भी हो सकती है यह बात।

पर नारी ने विश्व समुदाय को विग्रह से मुक्त भी कराया है। इस बात से हम अनभिज्ञ नहीं होकर भी अनभिज्ञ ही हैं।

नारी में निर्माणक शक्ति भी है, सृजनात्मक शक्ति भी है और विनाशात्मक शक्ति भी।

तीनों ही रूपों में नारी को हम देख सकते हैं।

प्रस्तुत प्रसंग में हमें नारी की निर्माणक और सृजनात्मक शक्ति को देखना है।

जैन कथानकों में महासती मृगावती की कथा आती है।

मृगावती एक समय युद्ध भूमि के मैदान में दिखाई देती है।

वहाँ वह विग्रहकर्त्री के रूप में नहीं अपितु सन्धि एवं शान्ति कर्त्री के रूप में दिखाई पड़ती है।

युद्धरत दो राजाओं को, जोकि भाई-भाई ही थे किन्तु इस बात से वे अनजान थे और उनकी माता मृगावती ही थी—वह उन्हें वस्तुस्थिति से अवगत कराकर वीतराग-वाणी का पान कराती है।

फलस्वरूप युद्ध स्थगित होकर शान्ति की शहनाइयाँ गूँज उठती हैं।

यह है नारी की शान्तिदूता के रूप में स्थिति। और भी अन्य उदाहरण मिल सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिन्तनशीला रूप में

पुरुष के समान ही नारी में भी चिन्तन शक्ति रही हुई है।

कभी-कभी, कहीं-कहीं नारी का चिन्तन पुरुष-चिन्तन से भी श्रेष्ठ एवं आगे बढ़ने वाला भी मिलता है।

सांसारिकता को लेकर चिन्तन तो प्रायः सभी में होता है किन्तु आत्मा और दर्शन की गूढ़ बातों का चिन्तन/प्रखर चिन्तन भी नारी कर सकती है। इसके भी अनेक उदाहरण हम देख सकते हैं शोध करने पर।

जैनागम में जयन्ति-श्राविका के द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उल्लेख मिलता है।

वह कुशाग्र बुद्धि की धनी एवं साहसिक भी थी।

देव-मनुज, अनेक ज्ञान सम्पन्न, लब्धिधारी मुनियों-साध्वियों के बीच समवशरण में विराजमान प्रभु महावीर से उसने सहज भाव से तत्त्व-शोधन की दृष्टि से अनेकों प्रश्न पूछे थे।

जयन्ति द्वारा पूछे गये प्रश्न बड़े ही दार्शनिक एवं मुमुक्षुओं के लिए हितकारी हैं।

दृढ़ संकल्पी और तपाराधना में अनुरक्त

पुरुष के समान नारी में भी संकल्प की दृढ़ता बेजोड़ दिखाई देती है।

नारी जब किसी कार्य का दृढ़ संकल्प कर लेती है तब वह उसे पूर्ण करके ही रुकती है।

'श्रीमद् अन्तकृद्दशांग-सूत्र' में साध्वि समुदाय के द्वारा संकल्पित विविध प्रकार की तप-आराधना का उल्लेख है। जिन्हें देखकर लगता है कि वे अपने संकल्प को कितनी दृढ़ता से पूर्ण करती हैं।

ऐसे-ऐसे दीर्घकाल तक की तप-आराधना को वे स्वीकार करती हैं कि हमें बड़ा आश्चर्य होता है।

नारी अपने मन पर कितना अधिक संयम रख सकती है इस बात को हम इन उदाहरणों के माध्यम से जान सकते हैं।

मेरु-सी अकंप श्रद्धावन्त

नारी समुदाय हमेशा से श्रद्धा/विश्वास प्रधान रहा है।

उसके हृदय में श्रद्धा की अखण्ड ज्योति सदा ही प्रज्वलित रहती है।

श्रद्धा—अन्धश्रद्धा और सद्धर्मश्रद्धारूप दो प्रकार की होती है।

दोनों में ही श्रद्धा-भाव की प्रधानता रहती है।

किन्तु अन्धश्रद्धा भटकाने वाली होती है भवों-भवों तक; जबकि सद्धर्म के प्रति जो श्रद्धा होती है वह भव-बन्धन से मुक्त करने वाली होती है।

वीतराग-वाणी पर श्रद्धा रखने वाली अनेक नारियाँ हुई हैं जैन धर्म में।

फिर भी जैन इतिहास में एक ऐसी घटना बनी है कि जिसे देखकर हमारा मन भी श्रद्धा भाव से भर जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजगृही निवासी सुलसा !

उसकी प्रभु महावीर पर इतनी अटूट श्रद्धा थी कि वीतराग-वाणी के सिवाय अन्य किसी की उपासना के लिए वह तैयार नहीं थी।

अनेक ऋद्धि का धारी अम्बड संन्यासी अनेक प्रकार के रूप बनाकर सुलसा की श्रद्धा की परीक्षा करता है, परन्तु वह बीतराग-वाणी के प्रति अटूट श्रद्धा भाव से एक इंच भी नहीं डिगी।

अम्बड ने महावीर का भी रूप बनाकर आकर्षित करना चाहा किन्तु फिर भी वह असफल हुआ। और घटना यहाँ ऐसी घट गई कि अम्बड स्वयं सुलसा की दृढ़ श्रद्धा के सामने झुक गया।

उपसंहार

इस प्रकार हम देखें कि नारी जाति जिसे हम दीन-हीन, अवला और असहाय मानते/समझते हैं वह कितनी उच्चकोटि की साधिका भी हो सकती है।

वस्तुतः हमने आज तक उसे हीनता की दृष्टि से ही देखा किन्तु अब हम उसे सम्मान की दृष्टि से भी देखें।

नारी ने सांसारिक जीवन एवं आध्यात्मिक जीवन दोनों में ही बहुत कुछ सुनहरे आदर्श स्थापित किये हैं।

आज पुनः समय आया है कि नारी-समाज अपने शुभ संस्कारों के माध्यम से मानव-समाज में श्रेष्ठ पीढ़ी का निर्माण करे। उसके बिना नारी समाज अपनी ही नारी जाति के द्वारा जो कीर्तिमान बनाये गये हैं उसकी रक्षा नहीं कर सकती।

जब तक नारी जाति अपनी शक्ति से परिचित नहीं होती, उसे जागृत नहीं करती तब तक कुछ भी नहीं हो सकता। अतः अपनी शक्ति जागृत कर नारी नारी-समुदाय का उदात्त रूप बनाये रखे।

पुष्प-सूक्ति-सौरभ

- वात्सल्य का प्रभाव केवल मनुष्यों एवं समझदार जानवरों पर ही नहीं, पेड़ पौधों और वनस्पति जगत पर भी अचूक रूप से पड़ता है।
- परमात्मा की शक्ति जितनी विराट् व व्यापक है, उतनी ही व्यापक व विराट् मानवीय शक्ति है।
- मानव-जीवन को महत्ता के पद पर प्रतिष्ठित करने वाले गुणों में सेवा एक महत्वपूर्ण गुण है।
- जिसने स्वयं अपने आपको चिरकाल तक आदर्श परिस्थितियों में रखकर ज्ञान, अनुभव, तप के आधार पर विशिष्ट बना लिया हो, वही वैसा उपदेश देने का अधिकारी है।

—पुष्प-सूक्ति-सौरभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org